शिक्षा में जीवन विद्या का परिचय

"मानव अपनी संपूर्णता में जीवन और शरीर का संयुक्त साकार रूप है"। शरीर संबंधी विश्लेषण यहाँ संक्षिप्त है, अपितु शरीर का प्रयोजन या उपयोग, जीवन के लिए क्या है, इतने को ही आगे स्पष्ट किया गया है। जीवन के आधार पर ही मनुष्य की महिमा, गरिमा और कार्य स्पष्ट होना ही "जीवन विद्या" है। यह मूलतः जीवन-ज्ञान ही है। चूँकि जीवन प्रत्येक व्यक्ति का स्वत्व है अतः जीवन ज्ञान प्रमाणित होना सहज है।

मनुष्य का संपूर्ण लक्ष्य - व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलम्बी, व्यवस्था का प्रमाण (स्वयं में व्यवस्था) और समग्र व्यवस्था में भागीदारी होना है। इसका स्रोत जीवन और जीवन का अक्षय बल, अक्षय शक्ति रूपी महिमा ही है। इस प्रकार जीवन के आंशिक महिमा, व्यवहार में सामाजिकता को, व्यवसाय में स्वावलम्बन को व्यवस्था में विश्वास और उसकी निरंतरता को बनाए रखना प्रमाणित करना और बनाए रखने योग्य परंपरा को स्थापित करना है।

जीवन विद्या का आधार अस्तित्व है। उसका प्रमाण प्रत्येक मनुष्य है। प्रत्येक मनुष्य में शरीर की विविधता देखने को मिलती है। शरीर रचना के मूल तत्व प्राण कोषा है और वह मूलतः समान है। जबकि प्रत्येक जीवन में अक्षय बल, अक्षय शक्तियों की समानता है। और जीवन जागृति क्रम में उसके प्रकाशन, संप्रेषणा एवं अभिव्यक्ति में विविधता है। जीवन जागृति ~~में~~ की स्थिति में सार्वभौम है। जिसके अर्धजागृत, जागृत और पूर्ण-जागृत भेदों में वर्गीकृत है।

मानव परंपरा में प्रमाणों के प्रमाणित करने का क्रम एवं आवश्यकता पहले से ही है। एवं अभी भी है तथा निरंतर रहेगी। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि मानव में, मैं, के लिए प्रामाणिकता परम महत्वपूर्ण है।

जीवन विद्या के प्रकाश में यह भी सूत्र मानव परंपरा को करतलगत है कि पूर्णता के अनंतर पूर्णता की निरंतरता होती है। अस्तित्व परम-पूर्ण है। और अस्तित्व में प्रत्येक एक, पूर्णता का अंकुर संपन्न है। जीवन गठन-पूर्ण पद में व उसकी निरंतरता में प्रकाशित है ही जागृति क्रम क्रिया पूर्णता व उसकी निरंतरता का होना, जागृति सहज अभिव्यक्ति है।

अस्तित्व में दृष्टा पद प्रतिष्ठा, जीवन में समाहित है अथवा दृष्टा पद प्रतिष्ठा का संपूर्ण कारण तत्व जीवन में समाहित है।

जीवन और अस्तित्व का दृष्टा अस्तित्व सहित जीवन ही है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि अस्तित्व में विकास की यात्रा, दृष्टा पद प्रतिष्ठा तक है। इसी के साथ यह भी स्पष्ट होना सहज है कि जीवन विद्या के मूल स्वरूप में जीवन-जागृति ही प्रधान अंग है।

जीवन विद्या और वस्तु विद्या का अविभाज्य अध्ययन आत्मा (अनुभव) की साक्षी में स्मरण पूर्वक किया गया संपूर्ण क्रिया कलाप की अनिवार्यता इस प्रकार से समीचीन हुई कि अस्तित्व में जड़ प्रकृति और चैतन्य प्रकृति का सह अस्तित्व सहज है। इसके मूल में अस्तित्व स्वयं सत्ता में संयुक्त प्रकृति ही संपूर्ण भाव और सह अस्तित्व होना है। इससे यह पता लगता है कि अस्तित्व स्वयं सह-अस्तित्व महिमा संपन्न है। सह अस्तित्व की महिमा से मुक्त होने अथवा दूर होने का दिशा काल देश नहीं है। इसलिए सह अस्तित्व का प्रभाव अथवा प्रभाव होना सतत् अस्तित्व में होना पाया जाता है। इसलिए अस्तित्व मूलक सह-अस्तित्व सहज प्रणाली मनुष्य के अध्ययन के लिए वस्तु होना शाश्वत सत्य है। इस प्रकार सह अस्तित्व का वैभव स्वयं स्पष्ट होता है। इसी क्रम में जड़ प्रकृति और चैतन्य प्रकृति के अस्तित्व होना भी सहज है। प्रत्येक मनुष्य में जड़ प्रकृति, प्राण कोशिकाओं से रचित, शरीर के रूप में-

शिक्षा में जीवन-विद्या का परिचय

दृष्टा है । चैतन्य प्रकृति, आशा विचार इच्छा संकल्प अनुभव रूपी अक्षय शक्ति और मन वृत्ति, चित्त बुद्धि आत्मा रूपी अक्षय बल के संयुक्त रूप में अध्ययन गम्य है । यह दोनों सत्ता में अर्थात् अरूपात्मक स्थितिपूर्ण वैभव में संयुक्त रहना देखने को मिलता है । देखने का तात्पर्य समझने से है । इस व्यापक स्थिति से यह स्पष्ट होता है कि जड़ चैतन्य प्रकृति का यह अस्तित्व स्वयं किसी प्रयोजन के अर्थ में है, उस प्रयोजन को समझना ही अध्ययन का अर्थ है । अर्थात् जीवन दृष्टा पद में होने का अर्थ है । जीवन जागृति दृष्टा पद का द्योतक है ।

अस्तित्व में, अस्तित्व का दृष्टा जीवन ही होना प्रमाणित होता है फलतः शरीर का भी दृष्टा जीवन ही है । शरीर को जीवंतता प्रदान करने वाला भी जीवन है । जीवन विहीन शरीर का अथवा शरीर से कोई व्यवहारिक अर्थ सिद्ध नहीं हो पाते । यही यह अस्तित्व की महिमा और कार्य प्रमाणित होता है । दूसरी महिमा - जीवन अपने आशा विचार, इच्छा संकल्प और अनुभूति के आधार पर सभी कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों को संचालित करता है अथवा जीवन से संचालित होता है । तीसरा - शरीर के द्वारा जीवन अपने आचरणों को व्यक्त करता है । ऐसा आचरण ही व्यवस्था, व्यवहार, व्यवसाय और अध्ययन के रूप में और कायिक, वाचिक, मानसिक, कृतकारित अनुमोदित क्रिया कलापों के रूप में देखने को मिलता है और प्रमाणित होता है । इसकी सहज समीचीनता को प्रत्येक व्यक्ति में कहे गए चारों आचरण के प्रति आशायों का होना सर्वेक्षण पूर्वक प्रमाणित होता है । इस प्रकार अस्तित्व में अध्ययन करने की वस्तु, अस्तित्व, सह अस्तित्व, विकास जीवन जागृति, रासायनिक - भौतिक रचना और विरचनाएँ हैं । इससे अधिक अस्तित्व में अध्ययन के लिए वस्तु नहीं है, इससे कम में अध्ययन पूरा होता नहीं है ।

अस्तित्व और जीवन जागृति, व्यवस्था के अर्थ में समीकृत होता है। अर्थात् व्यवहारान्वयन, क्रियान्वयन, बोध गम्य, आचरण गम्य होता है। व्यवस्था स्वयं वर्तमान में विश्वास, वर्तमान में विकास और वर्तमान में स्वभावगति, सह दृष्टा पद प्रतिष्ठा में होने वाली प्रमाण और प्रामाणिकता है। प्रकारान्तर में इस सहज आशय से प्रत्येक मनुष्य में आशा आकांक्षा जिज्ञासा के रूप में होना पाया जाता है या कल्पना के रूप में भी पाया जाता है। इस तथ्यों के अवलोकन करने पर यह पता लगता है कि प्रत्येक मनुष्य में भी स्वतंत्रता और कल्पनाशीलता सहज रूप में व्यक्त होते रहता है। ऐसी दोनों वैभव के दृष्टि बिंदु को पहचानना एक आवश्यकता है अर्थात् अनिवार्यता है इस आधार पर हम इस बात को अर्थात् मनुष्य इस बात को प्रमाणित करने के लिए योग्य है कि कल्पनाशीलता का दृष्टि बिंदु स्वराज्य के रूप में, और स्वतंत्रता का दृष्टि बिंदु स्वानुशासन के रूप में प्रमाणित होता है तथा अध्ययन गम्य और बोधगम्य भी है। आचरण व्यवहार गम्य होता है। यह ही जीवन विद्या की सीमा में दिखने वाली और समझ में आने वाले तथ्य हैं। इसी के साथ और भी एक यथार्थ समझ में आता है कि मनुष्य के शरीर में कोई ऐसा अवयव नहीं है जो, न्याय की अपेक्षा करता हो, प्रयत्न करता हो, इस बात को समझने के उपरान्त यह भी समझ में आता है कि नियम, न्याय, समाधान सत्य का दृष्टा शरीर नहीं हो पाता, जीवन ही होता है। इन तथ्यों के आधार पर शरीर और जीवन के सह अस्तित्व में शरीर की उपयोगिता जीवन की प्रयोजनीयता दोनों [illegible] हो पाते हैं। इसे केवल जीवन विद्या के जानकारी से ही देखा जाता है और उसका जाता है। इस प्रकार मानव परंपरा का वैभव और उसका स्रोत समझ में आता है। जीवन अपनी जागृति

शिक्षा में जीवन विद्या का परिचय

को स्वानुशासन के रूप में सर्वसुलभ प्रमाणित करती है। साथ ही शरीर का उपयोग मानव परंपरा में समाजगति के अर्थ में प्रमाणित हो पाती है। यद्यपि इसमें जीवन जागृति ही प्रधान वस्तु है। इस प्रकार जीवन के अभिव्यक्त होने का माध्यम शरीर ही है। और शरीर का उपयोग मानव परंपरा के अर्थ में है न कि व्यक्ति के अर्थ में।

जीवन-जागृति का सत्यापन व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलम्बी और प्रत्येक मनुष्य स्वयं में एक व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी के रूप में है। यही मानव परंपरा का वैभव है। मानव अपने में उक्त वैभव के आधार पर अखंड समाज और सार्वभौम व्यवस्था है। जो सदा-सदा के लिए प्रत्येक मनुष्य से सम्पूर्ण मनुष्य तक समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व को निरंतर उदयशील बनाए रखने के लिए सम्पूर्ण सामर्थ्य संपन्न है। यही धरती को स्वस्थ, सुंदर समाधानपूर्ण, पद्धति-प्रणाली और नीतियों का कला-वैभव है। जिसको प्रमाणित करने की अर्हता को प्रदान करना ही "शिक्षा संस्कार" की सार्थकता है। इसे मूल्यांकन करने की विधि ही स्वयं व्यवस्था है। और शरीर पोषण, संरक्षण समाजगति के लिए अर्पित होना संपूर्ण उत्पादन का उपयोग सदुपयोग और प्रयोजन है। इस विधि से मानव व्यवस्था, अखंड समाज, सामाजिकता और समृद्धि की अविभाज्य अभिव्यक्ति है। यही वस्तु विद्या और जीवन विद्या के संयुक्त शिक्षा का प्रयोजन है तथा यही उच्च शिक्षा का अभीष्ट है।